Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 4, March-2019, ISSN 2230-7540

प्राचीन भारत में भूमिदान: उद्भव एवं विकास

Sushila Devi*

M.A. in History, UGC NET

सार – ***प्राचीन भारतीय समाज में पुण्यप्रद धार्मिक कृत्य के रूप में दान का विशिष्ट स्थान रहा है, जिसकी परम्परा ऋग्वैदिक काल से लेकर आज तक चलती आ रही है। यद्यपि दान को मूलतः धार्मिक व्यवस्था के अन्तर्गत रखा जाता है किन्तु वास्तव में अनेक जटिल सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का निराकरण दान व्यवस्था के माध्यम से प्रतिपादित किया गया। दान की इसी उपादेयता के कारण शास्त्रकारों ने प्रत्येक युग में इसकी महत्ता की चर्चा भिन्न-भिन्न प्रसंगों में की है।***

---------------------------------x---------------------------------

पूर्व मध्यकालीन निबन्धकार हेमाद्रि ने दान की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि -

''दानं परं प्रशंसन्ति दानमेव परायणं

दानं बन्धुम्मनुष्याणां दानं कोषा ह्वयन्तुत्वम्

न दानाधिकं किंचित दृश्यते भुवनत्राये।''

अर्थात् दान परम प्रशंसनीय है, दान में ही परायण है, दान बन्धु है, मनुष्यों का अत्युत्तम कोष है, दान ही त्रैलोक्य में श्रेष्ठ है।

दान का सामान्य अर्थ है देना। 'दा' धातु से अन् प्रत्यय होकर दान शब्द निर्मित हुआ है। परम्परानुसार किसी वस्तु पर अपना स्वत्व हटाकर किसी दूसरे को अपने वस्तु का स्वामी बना देना ही दान है। हेमाद्रि ने दान की व्याख्या करते हुए लिखा है कि श्रद्धापूर्वक शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित विहित गुण वाले पात्र में विसर्जित द्रव्य दान है। ब्राहमाण्ड पुराण में कहा गया है कि जो वस्तु अपने को सर्वाधिक प्रिय लगने वाली हो, न्याय मार्ग से जिसकी प्राप्ति हुई हो, उसे गुणवानों के लिए अर्पित् करना दान है।

धर्मशास्त्रों में धर्मयुक्त देय पदार्थों की चर्चा विस्तार से की गयी है तथा इसे उत्तम, मध्यम तथा निकृष्ट तीन कोटियों में विभक्त किया गया है। उत्तम पदार्थ है - भोजन, दही, मधु, रक्षा, गाय, भूमि, सोना, अश्व एवं हाथी। मध्यम पदार्थ हैं - विद्या, आश्रयगृह, घरेलू उपकरण, औषधि तथा निककृष्ट पदार्थ हैं - जूते, हिंडोले, छत्र, वर्तन, आसन, दीपक, लकड़ी या अन्य जीण-शीर्ण वस्तुयें। धर्मशास्त्रों में तीन प्रकार के देय सर्वोत्तम कहे गये हैं यथा - गाय, भूमि एवं विद्या। इन्हें अतिदान की सज्ञा दी गई है। वासिष्ठ धर्मसूत्र, मनु तथा याज्ञवल्क्य स्मृति में विद्या को सर्वश्रेष्ठ दान बताया गया है जबकि अनुशासनपर्व एवं विष्णुधर्मोत्तर पुराण में भूमिदान को सर्वश्रेष्ठ दान बताया गया है। यहाँ दान के सभी विस्तृत आयामों पर विचार न करके भूमिदान को ही अध्यन का मुख्य आधार बनाया गया है जिसमें प्रथम शताब्दी ई. से लेकर पूर्व-मध्यकाल तक परिवर्तित होती हुई सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था के अन्तर्गत भूमिदान के क्रमिक विकास को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

भारत वर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल से ही भूमिदान को सर्वोच्च पुण्यकारी कृत्य माना गया है। धर्मयुक्त देय पदार्थों में अन्य वस्तुओं के साथ भूमि का समावेश कब हुआ यह कहना कठिन है किन्तु धार्मिक कर्मकाण्ड से सम्बद्ध भूमिदान के उदाहरण प्राचीन काल से ही प्राप्त होने लगते हैं। ऋग्वेद में भूमिदान के स्पष्ट उदाहरण नहीं प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद में दान दी गई वस्तुओं की सूची में गाय तथा घोड़े का ही अधिक उल्लेख मिलता है जो इस बात की ओर सम्भवतः संकेत करता है कि ऋग्वैदिक काल में आर्थिक इकाई के रूप में भूमि की सापेक्षिक महत्ता कम थी और भूमि का स्वामित्व सम्पूर्ण जन के पास संयुक्त रूप से था। सम्भवतः यही कारण है कि ऋग्वेद में राज को गोपा कहा गया है न कि भूमिपा भूमि को दान में दिये जाने के उदाहरण उत्तरवैदिक काल से स्पष्ट रूप से प्राप्त होने लगते हैं। अथर्ववेद में विभिन्न यज्ञों के सम्पादन में यथाशक्ति अन्न एवं पृथ्वी की दक्षिणा दिये जो का उल्लेख मिलता है। यहां पर पृथ्वी का दान यज्ञ की दक्षिणा में संलग्न दिखाई देता है। ब्राहमण साहित्य के

www.ignited.in

अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इस काल में कर्मकाण्डीय प्रक्रिया में विकसित दान के फलस्वरूप अत्यधिक यज्ञों का विकास हुआ तथा सामाजिक विकास के क्रम में कतिपय नवीन तत्त्वों का आविर्भाव हुआ यथा पुरोहित वर्ग का विकास एवं धार्मिक कृत्यों विशेषकर यज्ञों के सम्पादन में विशषज्ञों के रूप में उनकी अनिवार्यता। धर्म के कर्मकाण्डीय स्वरूप की जटिलता के कारण इस काल में बड़े-बड़े यज्ञों का सम्पादन किया जाने लगा तथा यज्ञकर्ता पुरोहित जैसे अक्षय वस्तु का भी दान दिया जाने लगा। ऐतरेय ब्राह्मण में विश्वकर्मन् नामक पौराणिक राजा की कथा में उसके द्वारा यज्ञों की दक्षिणा में भूमिदान दिये जाने का विवरण मिलता है। किन्तु शतपथ ब्राह्मण में भूमिदान का निषेध किया गया है। सन्दर्भ समाज में प्रचलित भूमिदान की परम्परा की ओर संकेत करते हैं। सम्भवतः अचल सम्पत्ति का दान समाज में मान्य न था। इसके बावजूद भी विभिन्न यज्ञों को सम्पन्न कराने वाले पुरोहितों को अक्षय दक्षिण के रूप में भूमि अथवा क्षेत्र दिये जाने की परम्परा को भी जारी रखा गया।

उपनिषद् युग में जटिल कर्मकाण्ड युक्त यज्ञों को निरर्थक बताया गया। यज्ञों का स्वरूप स्थूल कर्मकाण्डी न होकर अपेक्षाकृत अतिभौतिक एवं सूक्ष्म हो गया। इष्ट-पूर्तानि दानों को भी निन्दनीय माना गया। उपनिषदों के अनुसार यह धर्म का वास्तविक स्वरूप न होकर अल्पभोग का साधन मात्र था। इस प्रकार ब्राह्मण धर्म के समानान्तर सम्भवतः एक नयी व्यवस्था कायम हुई जिसमें दानधर्म को भौतिक धरातल से उठाकर विशुरु रूप से उसकी आध्यात्मिक व्याख्या की गयी। फलस्वरूप इस युग में दान उन बौद्धिकों को ही देने का विधान बनाया गया जो तत्व ज्ञान एवं पिस्या में संलग्न थे। तैतरीय उपनिषद् में ज्ञान की दृष्टि से ब्राह्मण को सम्मानित करने की बात कही गई है।

यज्ञ-यागों की अनिवार्यता, जटिल कर्मकाण्ड, धर्मनिष्ठा और लोक संग्रह की भावना को पुरोहित के साथ संम्पृक्त करके सामाजिक व्यवस्थाओं का नियमन करना सूत्रकाल की मुख्य विशेषता रही है। सूत्रकाल में पूर्व से परम्परा चली आ रही ब्राह्मण व्यवस्था अर्थात् याज्ञिक कर्मकाण्ड को पुनः स्थापित किया गया, जिसे उपनिषद काल में विरोधी भावों द्वारा विच्छिन्न कर दिया गया था। इस काल में दान व्यवस्था जितनी व्यवहारिक थी उतनी ही लोक साधना के भाव से प्रेरित थी। सूत्र साहित्य में यज्ञों की अनिवार्यता पर पुनः बल दिया गया तथा प्रत्येक यज्ञ की अलग-अलग दक्षिणा घोषित की गयी। सूत्रकाल में भूमिदान की परम्परा भी इन्हीं याज्ञिक दक्षिणा से सम्बद्ध रही। आश्वलायन श्रौतसूत्र एवं मानव श्रौतसूत्र में यज्ञ की दक्षिणा में उर्वरा भूमि के टुकड़े दिये जाने का उल्लेख मिलता है। लाट्यायन श्रौतसूत्र में राजसूय यज्ञ में कुछ ब्राह्मणों को ग्रामदान दिये जाने का उल्लेख है। भूमिदान की परम्परा में जैन और बौद्ध धर्मों के कारण और स्थिरता आयी। बौद्ध भिक्षुओं और संघों के प्रति भूमिदान के कई उदारहण बौद्ध साहित्य में प्राप्त होते हैं। मज्झिमनिकाय चुल्लवग्ग में तो भूमिान के मात्र संकेत प्राप्त होते हैं किन्तु जातकों में ऐसे विवरणों की अधिकता है। जहाँ तक बौद्ध संघ के प्रति निवेदित भूमिदान का प्रश्न है, सम्भवतः यह उनके सुनिश्चित आवास व्यवस्था से सम्बन्धित है। इसके संकेत बौद्ध साहित्य से भी मिलते हैं। बौद्ध संघ के प्रारम्भिक दिनों में बौद्ध भिक्षुओं के पास स्थायी आवास की कोई व्यवस्था नहीं थी। बौद्ध भिक्षु वर्षावास के दिनों में गृहस्थी पर ही आश्रित रहा करते थे। कई बार इसकी कोई व्यवस्था नहीं हो पाती थी, तो भिक्षु जहाँ-तहाँ गिरि गुहा, कंदरा आदि निवास में निवास करते थे। इसी समस्या के समाधान के लिए बुद्ध ने श्रद्धालुओं को स्थायी विहारों के निर्माण की अनुज्ञा प्रदान की थी। आरम्भ में इनका अस्तित्व मात्र वर्षावास तक सीमित था। किन्तु धीरे-धीरे धर्म के ढीले पड़ते नियमों, चैत्य व मूर्ति पूजा आदि के विकास के साथ-साथ बौद्ध भिक्षुओं ने स्थायित्व का मार्ग ढूँढ निकाला। ये विहरों में सम्मिलित रूप से रहकर धार्मिक कृत्यों के साथ-साथ अध्ययन-अध्यापन भी करने लगे तथा इन्हें श्रद्धालुओं द्वारा विभिनन प्रकार की वस्तुयें जैसे वस्त्र, भोजन, चीवर इत्यादि के साथ-साथ भूमि भी दान में दी जाने लगी। जैन भिक्षुओं के प्रति भी इसी प्रकार आवसार्थ भूमि का समर्पण जुड़ा था। जिनसेन के आदि पुराण में भमि, क्षेत्र, आवास आदि बनवाकर दान में दिये जाने का विवरण प्राप्त होता है। सम्भवतः छठी शताब्दी ईसा पूर्व की धार्मिक क्रान्ति के फलस्वरूप भूमिदान के महत्व में व्यापक वृद्धि हुई। जैन-बौद्ध धर्मावलम्बियों द्वारा भोगे जा रहे इस लाभ ने ब्राह्मण शास्त्रकारों को और भी आकर्षित किया और ब्राह्मण साहित्य में भी भूमिदान के लम्बे चैड़े विवरण प्राप्त होने लगे। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि प्रारम्भ में भूमिदान धार्मिक कर्मकाण्ड से सम्बद्ध रहा किन्तु धीरे-धीरे इसने अपना स्वतन्त्र संस्थात्मक अस्तित्व बना लिया तथा इसे पुण्यप्रद धार्मिक कृत्य के रूप में मान्यता मिल गयी।

पुण्यप्रद धार्मिक कृत्य के रूप में भूमिदान के विस्तृत विवरण प्राप्त होते हैं। महाभारत में अनेक रूपों में भूमि के दान से भिन्न-भिन्न पुण्यफल प्राप्ति का आदर्श प्रस्तुत किया गया है जिसके अनुसार भूमि के टुकड़े के दान मात्र से सुख सम्पन्नता की प्राप्ति होती है, रत्नों से समृद्ध भूमि के दान से वंश की वृद्धि होती है, शीत, वायु तथा ताप से रक्षा के निमित्त दिये गये गृह एवं क्षेत्र के दान का पुण्य कभी नष्ट नहीं होता। गृह का दान देने वाला स्वर्ग में भ सुख का उपभोग करता है। रामायण में अश्वमेघ एवं विश्वजित यज्ञ की दक्षिणा में पृथ्वी

के दान की चर्चा मिलती है। इस प्रकार के वर्णनों से यह प्रतीत होता है भूमिदान समाज में पुण्यप्रद तथा प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त हो गया था। अर्थशास्त्रा में भी भूमिदान के संकेत प्राप्त होते हैं। कौटिल्य ने विद्वान, श्रैत्रिय ब्राहमण आदि के साथ-साथ अमात्य तथा राजकीय कर्मचारियों को भी उनके सेवाओं के बदले में भूमि दिये जाने का निर्देश दिया है लेकिन डॉ. आर.एस. शर्मा के अनुसार अर्थशास्त्र में केवल नई बस्तियों से सम्बन्धित कुछ ही अधिकारियों को भूमि देने की बात की गयी है जबकि अन्य अधिकारियों को नगद वेतन दिया जाता था।

अर्थशास्त्र में राजकर्मचारियों के अतिरिक्त अधीनस्थ सामंतों तथा विजित राजाओं को भी राजनीतिक प्रयोजन से भूमि देने की बात की गयी है। राज्यशास्त्र के चार कूटनीतिक उपायों साम, दान, दण्ड, भेद में दान के अन्गर्तत कौटिल्य ने भूमिदान को भी सम्मिलित किया है किन्तु इसके उपयोग में सावधानी बरतने का निर्देश भी है। कौटिल्य के अनुसार यदि राजा भूमि देने पर अधीनता स्वीकार कर ले तो उसे निर्गुण (ऊसर) भूमि देनी चाहिए। आटविक राजा को ऐसी भूमि देनी चाहिए, जिसमें कृषि न हो सके। नजरबन्द शत्रु के पुत्र को ऐसी भूमि देनी चाहिए, जहां नित्य उपद्रव होते हो। शत्रु पक्ष के किसी भी व्यक्ति को ऐसी भूमि दी जानी चाहिए, जो किसी काम की न हों। विजित राज्य में शान्ति स्थापना की दृष्टि से असंतुष्ट सामंतों को भी भूमिदान के माध्यम से संतुष्ट करना चाहिए। इस प्रकार राज्य के विस्तार और सुरक्षा ही दृष्टि से किये गये कूटनीतिक उपायों में भूमिदान का उपयोग भी कूटनीति के रूप में किया गया।

कौटिल्य की भाँति मनु ने भी विद्वान गुद्व असंचयशील ब्राहमण के साथ-साथ राजकर्मचारियों के वृत्ति व्यवस्था के निमित्त भूमिदान दिये जाने का विधान प्रस्तुत किया है किन्तु अविद्वान ब्राहमण को भूमि दान में देने का निषेध किया है। याज्ञवल्क्य ने भी वेदज्ञ ब्राहमण के पक्ष में भूमिदान देने का निर्देश दिया है। भूमिदान के महत्ता तथा इसके व्यापक प्रचलन के कारण स्मृतिकारों ने इसके विषय में अनेकानेक नियम प्रतिपादित किये हैं। याज्ञवल्क्य ने ताम्रपट्टों पर लिपिबद्ध कराकर भूमिदान देने की परम्परा को पूर्ण मान्यता प्रदान की है। याज्ञवल्क्य के अनुसार राजा को भूमिदान करते समय उसे भविष्य में आने वाले भद्र राजाओं के लिए लिखित आदेश छोड़ने चाहिए और उसे अपनी मुद्रा मुहर द्वारा प्रमाणित कर किसी वस्त्र या ताम्रपट्ट के ऊपर चिन्हित करना चाहिये और नीचे अपना तथा पूर्वजों का नाम स्पष्ट रूप से अंकित करना चाहिये और नीचे अपना तथा पूर्वजों का नाम स्पष्ट रूप से अंकित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त दान के परिमाण तथा उन स्मृतियों की उक्तियों को भी लिखित करवाना चाहिये जो दिये हुए दान को प्रत्यावर्तित करने वाले की निन्दा करती हैं। याज्ञवल्क्य की भाँति विष्णुस्मृति में भी वस्त्र या ताम्रपत्र पर भूमिदान का विवरण लिखवाकर राजमुद्रा अंकित करने का निर्देश दिया गया है।

बृहस्पति स्मृति में भूमिदान की प्रशंस की गयी है तथा उक्त दान के अपहरणकर्ता को पुनर्जन्म में घृणित यातना का भोगी, प्रायश्चित के अयोग्य तथा अपहरण में सहयोगी व्यक्ति को नरकगामी तथा दान ज्ञाता को स्वर्गगामी बताया गया है। बृहस्पति के अनुसार यदि कोई मनुष्य तंगहाली में आकर कोई पाप करता है तो गोचर्म मात्र भूमि के दान से अपने सारे पाप धो सकता है-

यत्किंचितत्कुरुते पापं पुरुषों वृति कर्शितः।

अपिगोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुध्यति।।

वसिष्ठधर्मसूत्र एवं महाभारत में भी गोचर्म मात्र भूमि के दान से पाप शुद्धि की बात कही गयी है। स्मृतियों की भाँति पुराणों में भी भूमिदान के अनेकानेक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। वामनपुराण में भगवान विष्णु द्वारा दानवराज बलि से भूमि प्राप्त करने का सन्दर्भ मिलता है। इस कथा के संकेत ब्राहमण ग्रन्थों के रचनाकाल से ही प्राप्त होने लगता है। शतपथ ब्राहमण के अनसुार विष्णु ने तीन पगों में ही पृथ्वी को ढक लिया तथा असुरों को अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उतनी ही भूमि देवताओं को देनी पड़ी। इस कथा से स्पष्ट होता है कि भूमिदान की परम्परा समाज में अति प्राचीन काल से ही प्रचलित थी। अग्निपुराण में भूमिदान को दस महादानों में से एक कहा गया है। भूमिदान का महत्व पौराणिक साहित्य से इतना अधिक दर्शाया गया है कि इसे पुण्य एवं यश के साथ-साथ स्वर्ग प्राप्ति का माध्यम भी बताया गया है। भूमिदान का महत्व पौराणिक साहित्य से इतना अधिक दर्शाया गया है कि इसे पुण्य एवं यश के साथ-साथ स्वर्ग प्राप्ति का माध्यम भी बताया गया है। इन्हीं पुण्य फलों के सन्दर्भ में देवीभागवत पुराण का उद्धरण भी महत्वपूर्ण है जहाँ भूमि के दान से प्राप्त भिन्न-भिन्न पुण्यफलों की चर्चा विस्तार से मिलती है। इसमें यह कहा गया है कि जो मनुष्य ब्राहमण को सस्ययुक्त भूमि दान देता है, वह लम्बे समय तक स्वर्ग में सुख भोगने के पश्चात् पुनः इस योनी में महान भूमिप बनता है, ग्रामदान करने वाला लक्षग्राम की प्राप्ति करता है तथा वापी तड़ाग, नानावृक्ष आदि से समन्वित प्रजायुक्त दस नगर देने वाला स्वर्ग उपभोग के पश्चात्

www.ignited.in

राजराजेश्वर पद प्राप्त करता है तथा जम्बूदीप का स्वामी होता है।

साहित्यिक साक्ष्यों के अनुरूप अभिलेखों में भी ऐसे अनेक धर्मश्लोकों का समावेश किया गया है जो भूूमिदान की महत्ता को प्रतिपादित करते हैं। इन विवरणों में कहीं इन्हें यज्ञों से अधिक प्रभावशाली बताया गया है तो कहीं आयु, पुत्र, धन एवं सौभाग्य यश आदि प्राप्त करने वाला कहा गया है। आरम्भिक आभिलेखिक साक्ष्यों में (शक-सातवाहन राजवंशों के अभिलेख) में इस प्रकार के पुण्यात्मक श्लोकों का अभाव है किन्तु गुप्त काल से भूमिदान की रक्षा करने से सम्बन्धित अथवा भूमिदान के महत्व को प्रतिपादित करने वाले विवरणों का बाहुल्य अभिलेखों में दिखाई देने लगता है।

प्राप्त अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर भूमिदान के तीन वर्ग परिलक्षित होते हैं यथा -

1. आवासार्थ भूमि (गुहा, विहार, गृह इत्यादि)
2. क्षेत्र अथवा खेत
3. ग्राम

भूमिदान या ग्रामदान का प्रथम अभिलेखीय प्रमाण सातवाहन रानी नागानिका के नानाघाट लेख में प्राप्त होता है किन्तु आवसार्थ भूमि के रूप में गुहादान के उदाहरण सातवाहनों के पूर्व से मिलना प्रारम्भ हो जाता है। मौर्य सम्राट अशोक तथा उसके पौत्र दशरथ द्वारा आजीविकों को दिये गये गुहादान इसके उदाहरण है। सातवाहनों के बाद तो धीरे-धीरे भारत के सभी क्षेत्रों से राजा द्वारा दिये गये ऐसे अनुदानों के उदाहरण अधिक मात्रा में प्राप्त होने लगते हैं, जहाँ राजाओं ने अपने नाम से जारी दान लेखों में स्वयं के द्वारा दिये गये दान का उल्लेख किया। ईस्वी सन् की चैथी सदी के मध्य से ऐसे अनुदानों में तेजी आयी और यह क्रम आगे के कई सदियों तक चलता रहा। गुप्त, गाहडवाल, चंदेल, प्रतिहार, परमार, पाल आदि राजवंशों के दानपत्रों में ऐसे भू-दानों के अनेकों उदाहरण प्राप्त होते हैं जिसमें राजस्व के सभी स्रोत ग्रहीताओं को हस्तांतरित कर दिये गये तथा शांति, सुव्यवस्था एवं प्रशासन के दायित्व सम्बन्धी कतिपय विशेषाधिकार भी उन्हीं को सौंप दिये गये। इस प्रकार भूमिदान के स्वरूप एवं सिद्धान्त स्थायी और परिवर्तन विहीन नहीं थे। प्राचीन भारत में उनका ऐतिहासिक विकास युग और परिस्थिति सोपस रहा है। जिस परिवेश में जैसी चुनौतियाँ रहीं उनके अनुरूप भूमिदान को अवधारणा बदलती चली गयी तथा इसका उपयोग धार्मिक कार्यों के साथ-साथ विभिन्न सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं के निराकरण में किया गया है।

संदर्भ

1. हमोद्रि, चर्तुवर्ग चिन्तामणि (दानखण्ड), पृ. 5
2. वही, पृ. 14

   “पात्रेभ्यो दयिते तित्यमनपेस्यप्रयोजनम्

   केवल त्याग बुद्धया यद्धर्म दानं तदुच्यते।”
3. ब्रह्माण्ड पुराण, 2.32.55
4. हेमाद्रि, दानखण्ड, पृ. 16
5. वसिष्ठ, धर्मसूत्र, 29.19
6. मनुस्मृति 4/233, याज्ञवल्क्य स्मृति 1/212
7. महाभारत (अनुशासन पर्व) 6212
8. पी.वी. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-2, पृ. 451
9. रामशरण शर्मा, फाम्र्स ऑफ़ प्रापर्टी इन दि अर्ली पोर्शन्स ऑफ़ द ऋग्वेद, प्रोसिडिग्स ऑफ़ इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस - 1873
10. अथर्ववेद, 9.2.7
11. ऐतरेय ब्राह्मण, 39.6
12. शतपथ ब्राह्मण, 6.3.1.38-39
13. तैतरीय उपनिषद, 1.11.3
14. छान्दोग्य उपनिषद, 4.1.4-5
15. आश्वलायन श्रौत सूत्र, 3.14
16. मानव श्रोैत सूत्र, 3.1.1.23
17. लाट्नायन श्रौत सूत्र, 9.1.14-22
18. मज्झिम निकाय, 2.5.5
19. चुल्लवग्ग, 6.2

www.ignited.in

20. जातक सं. 211, 456

21. जातक, सं. 1, पृ. 327-329

22. दिनेशचन्द्र सरकार, सलेक्ट इस्क्रिप्शंस, प्रथम भाग, पृ. 170

23. आदिपुराण, 20.88

24. महाभारत (अनुशासन पर्व), 61.2-5

25. रामायण (बालकाण्ड) 28.12

26. अर्थशास्त्र, अधिकरण 2 प्रक. 19 अ. 1, अधि. 2, अक. 17, अंक 1

27. रामशरण शर्मा, भारतीय सामंतवाद, पृ. 14

28. मनुस्मृति, 2.246, 2.227- . 16

29. पी.वी. काणे, पूर्वोक्त पृ. 45

30. याज्ञवल्क्य स्मृति 1.318-320

31. विष्णु स्मृति, 3.58

32. बृहस्पति स्मृति, 1.7

33. बृहस्पति स्मृति, 1.7

34. वशिष्ठ धर्मसूत्र, 39.16

35. महाभारत (अनुशासन पर्व) 62.19

36. वामन पुराण, सुरोमहात्म्य, 2.8

37. शतपथ ब्राह्मण, 1.2.5.5

38. अग्निपुराण, 209/23-24

39. देवीभागवत पुराण, 9.30 37-48

40. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग-12, पृ. 127

41. राजबली पाण्डेय, हिस्टारिकल लिटरेरी इन्स्क्रिप्शंस, पृ. 41-42

42. वही, पृ. 48

Corresponding Author

Sushila Devi*

M.A. in History, UGC NET

sushilabhakhar23@gmail.com